ध्यानेन=ध्यान द्वारा; **आत्मनि**=हृदय में; **पश्यन्ति**=देखते हैं; **केचित्**=कोई-कोई; **आत्मानम्**=परमात्मा को; **आत्मना**=विशुद्ध चित्त के द्वारा; **अन्ये**=अन्य; **सांख्येन**=ज्ञानवार्ता के द्वारा; **योगेन**=योग के द्वारा; **कर्मयोगेन**=निष्काम कर्म के द्वारा; **च**=भी; **अपरे**=दूसरे।

अनुवाद

उस परमात्मा को कितने ही मनुष्य विशुद्ध चित्त से ध्यान करते हुए हृदय में देखते हैं, तो दूसरे ज्ञान और निष्काम कर्मयोग के द्वारा देखते हैं।।२५।।

तात्पर्य

श्रीभगवान् अर्जुन को सूचित करते हैं कि स्वरूप-साक्षात्कार की जिज्ञासा के सम्बन्ध में बद्धजीवों की दो श्रेणियाँ हैं। जो अनीश्वरवादी, अज्ञेयतावादी तथा संशयात्मा हैं, उन मनुष्यों में तो ज्ञान का लेश भी नहीं होता। परन्तु बहुत से ऐसे मनुष्य भी हैं, जो परमार्थ में श्रद्धावान् हैं। ये निष्काम कर्मयोगी कहलाते हैं। अद्वैतवादी अनीश्वरवादियों की कोटि में ही आते हैं। भाव यह है कि वास्तव में एकमात्र भगवद्भक्त पारमार्थिक बोध के अधिकारी हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रकृति से परे एक अप्राकृत धाम है तथा प्राणीमात्र में परमात्मारूप से व्यापक श्रीभगवान् भी मायातीत हैं। अवश्य अन्य अनेक साधक ज्ञान के अनुशीलन से भी परमसत्य को जानने का प्रयास करते हैं। उन्हें द्वितीय कोटि में सम्मिलित किया जा सकता है। अनीश्वरवादी दार्शनिकों के मत में यह जगत् चौबीस तत्त्वों से निर्मित है; जीवात्मा पच्चीसवाँ तत्त्व है। जब उन्हें बोध हो जाता है कि जीवात्मा स्वरूपतः इन प्राकृत तत्त्वों से अतीत है, तो वे यह भी जान सकते हैं कि जीव के ऊपर एक और तत्त्व है—श्रीभगवान्। इस विधि से क्रमशः वे भी कृष्णभावनाभावित भक्तियोग के स्तर पर पहुँच जाते हैं। निष्काम कर्म करने वालों का साधन भी उन्हें संसिद्धि की दिशा में अग्रसर करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें कृष्णभावनाभावित भक्तियोग के स्तर तक उन्नति करने का सुयोग मिलता है। इस श्लोक में उल्लेख है कि बहुत से शुद्धबुद्धि मनुष्य ध्यान द्वारा परमात्मा की प्राप्ति में तत्पर हैं। हृदय में परमात्मा की उपलब्धि हो जाने पर वे दिव्य अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। इसी भाँति, दूसरे ज्ञान के सेवन से परमात्मा को जानने का साधन करते हैं। ऐसे भी हैं, जो हठयोग का अभ्यास करते हुए अपनी बालोचित क्रियाओं के श्रीभगवान् को प्रसन्न करना चाहते हैं।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।२६।।

अन्ये=दूसरे मनुष्य; **तु**=किन्तु; **एवम्**=यह; **अजानन्तः**=न जानते हुए; **श्रुत्वा**=सुन कर (ही); **अन्येभ्यः**=दूसरों से; **उपासते**=उपासना में प्रवृत्त हो जाते हैं; **ते**=वे; **अपि**=भी; **च**=तथा; **अतितरन्ति एव**=निस्सन्देह तर जाते हैं; **मृत्युम्**=मृत्युरूप